International Journal of Advanced Research and Development
ISSN: 2455-4030
Impact Factor: RJIF 5.24
www.advancedjournal.com
Volume 3; Issue 2; March 2018; Page No. 542-545

मुक्तिबोध का काव्य शिल्प : एवं फैंटेसी

राघवेन्द्र प्रताप सिंह
शोधार्थी, हिंदी एवं भाषा विज्ञान विभाग, रानी दुर्गावती विश्वविद्यालय, जबलपुर, मध्य प्रदेश, भारत।

प्रस्तावना

मुक्तिबोध ने अपने लिए फैंटेसी के शिल्प को चुना था, जिसमें मिथक, प्रतीक, रूपक, उपमा, बिंब आदि अभिव्यक्ति के विभिन्न उपकरण घुल-मिलकर आए हैं। वस्तुतः "फैंटेसी" जो हिंदी का अपना न होकर अंग्रेजी का शब्द है। इसके अर्थ के साथ ही फैंटेसी को स्वरूप, उसकी प्रकृति के विषय में मनोविश्लेषणवादी मनोवैज्ञानिकों, क्रिस्टोफर काडवेल जैसे समर्थ साहित्यिक चिंतकों की मान्यताओं पर भी विचार करना जरूरी है। फैंटेसी का मुक्तिबोध सम्मत अर्थ "एक साहित्यिक की डायरी" के "तीसरा क्षण" शीर्षक निबंध और "कामायनी : एक पुनर्विचार" शीर्षक समीक्षात्मक ग्रंथ में विस्तार से स्पष्ट हुआ है। लेकिन इससे पूर्व विषय-वस्तु, रूप या शिल्प के संबंध को लेकर मुक्तिबोध की मान्यताओं से आपका परिचय होना आवश्यक है। कथ्य और शिल्प के पारस्परिक संबंध के विषय में मुक्तिबोध की यह मान्यता रही है कि इन दोनों को एक-दूसरे से पूरी तरह अलग-थलग कर के हम इनका वास्तविक मूल्यांकन नहीं कर सकते। इस तथ्य को समझने के लिए उनकी समीक्षात्मक कृतियों के हवाले की अपेक्षा एक कवितांश को उद्धाहरणके रूप में विवेचित विश्लेषित करना अधिक व्यावहारिक होगा :

"अधुरी और सतही जिंदगी के गर्म रास्तों पर
हमारा गुप्त मन
निज में सिकुड़ा जा रहा
जैसे कि हब्शी एक गहरा स्याह
गोरों की निगाहों से अलग ओझल
सिमिट कर सिफर होना चाहता हो जल्द।
मानो कीमती मजमून
गहरी गैर कानूनी किताबों, जब्त पर्चोंको को
कि पाबंदी लगे से भेद सा बेचैन
दन का खून
जो भीतर
हमेशा टप्प टप कर टपकता रहता
तड़पते से खयालों पर
यही कारण कि सिमटा जा रहा सा हूं
स्वयं की छांह की भी छांह सा बारीक
होकर छिप रहा सा हूं
समझदारी व समझौते
विकट गड़ते।
हमारे आप के रास्ते अलग होते।
व पल भर, मात्र
आत्मलोचनात्मक स्तर प्रखर होता।"

(चकमक की चिनगारियां पहला बंद)

यहां कवि ने बाह्यमन, जो अधिकांशतः दुनियादार होता है, उस के दबाव से गुप्त मन (अंतरात्मा) के संकुचित होने, छिप जाने को बहुत से गोरों की निगाहों से बचने-छिपने वाले हब्शी स्थिति और सरकारी पाबंदी लगे हुए सत्य की अभिव्यक्ति की छटपटाहट की स्थिति जैसे दो उपमानों द्वारा प्रस्तुत किया है। आप गौर करें कि यद्यपि अंतिम दोनों स्थितियाँ जो अभिव्यक्ति का उपकरण बन कर आयी हैं, अप्रस्तुत हैं और प्रस्तुत का बिंब-ग्रहण कराने के लिए इनकी योजना की गयी है, फिर भी ये उपकरण कथ्य का अभिन्न अंग बनकर उसे और अधिक सम्पन्न करते हैं। इनके माध्यम से मुक्तिबोध का आत्मसंघर्ष उसकी दिशा, दृष्टि और मूल्य भावना भी संकेतित हुई है। यदि इन दोनो उपमानमूलक उपकरणों को काव्यांश से निकाल दिया जाए तो भी लाक्षणिक प्रयोगों और बिंबात्मक शिल्प के माध्यम से मूल कथ्य की अभिव्यक्ति तो हो जाती है। लेकिन इन्हें निकाल देने पर मुक्तिबोध की निजी वेदना और छायावादी कवियों, नयी कविता के कवियों की वेदना के मध्य जो अंतर है, वह पूरी तरह समाप्त हो जाएगा। "गोरो की निगाहों से छिपकर सिफर होने वाला हब्शी" आज क विश्व-व्यापी उत्पीड़न और शोषणचक्र का एक सत्य है, जो कवि के गहन सामाजिक सरोकार से भी जुड़ा हुआ है। गैर कानूनी किताबों और जब्त परचों में छिपा हुआ " कीमती मजमून" केवल आज की दुनिया भर की सच्चाई ही नहीं, मुक्तिबोध के व्यक्तिगत अनुभव का भी एक अंग है। सन् 52 में "कामायनी" पर लिखी गई उनकी प्रथम समीक्षात्मक रचना मुद्रित होकर भी प्रकाशक की अनुदारता से प्रकाश में नहीं आई और दूसरी रचना "भारत : इतिहास और संस्कृति" सन् 62 ई. में मध्य प्रदेश सरकार के शिक्षा विभाग द्वारा पाठ्यक्रम में निर्धारित होने के

बावजूद उसी सरकार के गृह मंत्रालय द्वारा गैर कानूनी (प्रतिबंधित) घोषित कर दी गई थी। अत: इन उपमानों का संबंध "अधूरी और सतही जिंदगी के गर्म रास्तों पर चलने" की व्यक्तिगत पीड़ा से भी है, जिसके संबंध में मुक्तिबोध ने लिखा है, "उस पुस्तक में (क) क्रांतिकारी आह्वान नहीं है, (ख) हिंसा का प्रचार नहीं है, (ग) वह अश्लील भी नहीं है। फिर भी उसमें कुछ एसे महत्वपूर्ण सत्यांश हैं,जो नागवार गुजरे।" (नये साहित्य का सौंदर्यशास्त्र पृ. 156)। कहने का तात्पर्य यह है कि इस कवितांश में अभिव्यक्ति के उपकरण भी मुक्तिबोध के व्यक्तित्व के, जीवन के और उनकी निजी दृष्टि के संदर्भ लिए हुए हैं। मुक्तिबोध के संपूर्ण काव्य में वस्तु (कान्टेंट) और रूप (फार्म) का यह संबंध स्पष्ट रूप से दिखाई देता है।

फैंटेसी मूलत: मनोविश्लेषण शास्त्र से संबंद्ध शब्द है, जिसकी व्याख्या स्वप्न के संदर्भ में फ्रायड और युंग ने की है। यद्यपि इन दोनों मनोविश्लेषणवादियों ने स्वप्न से फैंटेसी को अलग करने का प्रयास किया है, लेकिन युग ने "अभिप्रेरित चिंतन" (डायरेक्टेड थींकिंग) के रूप में विवेक द्वारा नियंत्रित सत्य के सामाजिक मानदंड के रूप में इसे स्वीकार किया है। प्रसिद्ध मार्क्सवादी समीक्षक क्रिस्टाफर काडवेल ने इस व्याख्या को अंशत: स्वीकार किया है और इसे "अभिप्रेरित अनुभूति" (डायरेक्टेड कालिग) सिद्ध करते हुए सौंदर्य या सौंदर्य या अच्छाई का सामाजिक मानदंड माना है। (इल्यूजन एंड रिएलिटी पृ. 160-61) फैंटेसी विवेक प्रक्रिया द्वारा अनुशासित न होकर हृदय या मन द्वारा अनुशासित होती है।

मुक्तिबोध ने फैंटेसी के संदर्भ में काडवेल की व्यवस्था को अधिकांशत: स्वीकार किया है किंतु "अभिप्रेरित अनुभूति" (डायरेक्टेड फीलिंग) के स्थान पर उसे "संवेदनात्मक उद्देश्य" से नियंत्रिता एक सक्रिय सर्जनात्मक इकाई के रूप में ग्रहण किया है "फैंटेसी डायनेमिक होती है। कला के प्रथम क्षण के अंतिम सिरे पर उत्पन्न होते ही उसकी गतिमानता शुरू हो जाती है।" (एक साहित्यिक की डायरी, पृ. 20) कला के प्रथम क्षण अर्थात् "जीवन के उत्कट तीव्र अनुभव क्षण" के अंतिम सिरे और कला के दूसरे क्षण अर्थात् सौंदयानुभूति के आरंभिक सिरे पर उत्पन्न फैंटेसी वस्तुत: निर्वैयक्तिकता की ही एक स्थिति को संकेतित करती है। निर्वैयक्तिकता की यह स्थिति ही मुक्तिबोध द्वारा निरूपित कला का दूसरा क्षण अर्थात् फैंटेसी का क्षण है, जिसके संबंध में मुक्तिबोध ने लिखा है, "जो फैंटेसी अनुभव की व्यक्तिगत पीड़ा से स्वतंत्र होकर, अनुभव के भीतर की ही संवदेनाओं के द्वारा उत्सर्जित और प्रक्षेपित होती वह एक अर्थ में वैयक्तिक होते हुए भी नर्वैयक्तिक होगी। उस फैंटेसी में अब एक भावनात्मक उद्देश्य की संगति आ जाएगी, इस संवेदनात्मक उद्देश्य के द्वारा ही वस्तुत: फैंटेसी को रूप-रंग मिलेगा।"

"फैंटेसी" के शिल्प की विशेषताओं का अत्यंत स्पष्ट और व्यावहारिक विवेचन मुक्तिबोध ने कामायानी : एक पुनर्विचार में किया गया है। फैंटेसी और जीवन के संबंध को स्पष्ट करते हुए मुक्तिबोध ने लिखा है, फैंटेसी में प्रतिच्छायित जीवन-तथ्य फैंटेसी के अपने फ्रेम के अंग ही हों, यह आवश्यक नहीं। आवश्यक इतना ही है कि फैंटेसी के रंग जीवन-तथ्यों के रंग से मिलते-जुलते हों अथवा उन तथ्यों के रंग से अनुस्यूत हों।

इस फैंटेसी का फ्रेम उसका ढांचा वस्तुत: अध्यात्मवादी है। इसलिए प्रिय-सौंदर्य को क्षितिज कहा गया है। "तुम कौन"? "मैं कौन"? ये प्रश्न भारतीय दर्शन के अंग रहे हैं। इन प्रश्नों में आत्मा-परमात्मा का प्रश्न द्योतित है। किंतु उपर्युक्त काव्य-पंक्तियों की सारी अर्थ दीप्ति कहां से स्फुरित हुई है? प्रियतम और प्रेयसी के परंस्पर संबंधों के जीवन तथ्य से। संक्षेप में, कवि जीवन के प्रणय-तथ्य का उद्घाटन कर रहा है। .....तु कौन हो मैं कौन हूं, हमारी वास्तविक स्थिति और स्तर क्या है .....इससे हमें मतलब नहीं। हम प्रेम करते हैं, इतना काफी है .....इस फैंटेसी का ढांचा अध्यात्मवादी-रहस्यवादी है, किंतु उसका मूल तथ्य प्रणय-तथ्यों से उद्गत होते हैं।" (कामायनी : एक पुनर्विचा) यह विशेष रूप से ध्यान देने योग्य है कि यहां प्रसाद जी ने केवल सामान्य जीवन-तथ्य ही नहीं प्रस्तुत कर दी है। यह लम्बा उद्धाहरण फैंटेसी के स्वरूप और उसके व्यावहारिक उपयोग को अच्छी तरह स्पष्ट कर देता है। यह फैंटेसी के संदर्भ में मुक्तिबोध की शिल्पगत विशेषताओं में भी पर्याप्त सहायक होगा।

मुक्तिबोध की शिल्पगत विशेषताओं पर विचार करने से पूर्व फैंटेसी के शिल्प की शक्ति एवं सीमाओं पर भी विचार कर लेना आवश्यक है। मुक्तिबोध ने स्वयं इसे भाववादी बुर्जुआ शिल्प माना है। यथार्थवादी शिल्प और यर्थार्थवादी दृष्टि तथा भाववादी शिल्प और भाववादी दृष्टि के अंतर को स्पष्ट करते हुए मुक्तिबोध ने लिखा है, "यथार्थवादी शिल्प के अंतर्गत यथार्थ के बिंब, यथार्थ के स्वरूप और गति के नियमों में बंधकर प्रस्तुत होते हैं। दूसरे शब्दों यथार्थवादी शिल्प के अंतर्गत विभाव-पक्ष (वस्तु पक्ष या मूल कथ्य) का चित्रण होता है, उस पक्ष के आधार पर भाव-पक्ष का उद्घाटन। इसके विपरीत भाववादी रोमैंटिक शिल्प अंतर्गत भाव-पक्ष का ही चित्रण होता है और विभाव-पक्ष (वस्तु-पक्ष) को नेपथ्य (पर्दे) में डाल दिया जाता है। ....संक्षेप में यथार्थवादी शिल्प और यथार्थवादी दृष्टि में अंतर है। यह बहुत संभव है यर्थार्थवादी शिल्प के विपरीत भाववादी शिल्प है उस शिल्प के अंतर्गत जीवन को समझने की दृष्टि यथार्थवादी रही हो।" (कामायनी : एक पुनर्विचार, पृ. 6) वहां तक मुक्तिबोध का प्रश्न है, उन्होंने भाववादी शिल्प अर्थात फैंटसी के शिल्प में अपनी यर्थार्थवादी दृष्टि के साथ ही अपनी द्वंद्वात्मक भौतिकवादी समझ को कुशलतापूर्वक प्रस्तुत किया है।

फैंटेसी और भाववादी शिल्प के संबंध में मुक्तिबोध की उक्त मान्यताओं को ध्यान में रखते हुए यदि हम उनकी कविताओं का विश्लेषण करें तो हमें स्पष्ट पता चलेगा कि फैंटेसी के शिल्प का उन्होंने अपने ढंग से विकास किया है। वे कभी अपने अनुभूत जीवन-तथ्यों को सुदूर अतीत के साथ संबंद्ध कर, फैंटेसी को स्वतंत्र दिक्काल (दिशा और समय) देते हुए, वर्तमान से आकर्षक दूरी पैदा करते हैं, तो कभी उसे वर्तमान के किन्हीं अन्य तथ्यों या भिन्न

स्थितियों के साथ संबंद्ध करें मात्र स्थानगत (स्पेस) दूरी पैदा करते हुए एक रहस्यलोक की सृष्टि करते हैं। यहीं नहीं, वरन् कहीं-कहीं वे वर्तमान जीवन तथ्यों को भविष्य के स्वप्निल आदर्श-लक्ष्यों के साथ जोड़ कर एक गहरी जिज्ञासा पैदा करते हैं। ये तीनों स्थितियां कभी अलग-अलग और कभी एक साथ भी बहुत सी कविताओं में मिलती हैं। फैंटेसी की इस बहुमुखी प्रकृति के कारण उनकी अधिकांश कविताओं में उनका पूरा व्यक्तित्व, संपूर्ण अनुभूत जीवन-सार और एक इच्छित जीवनादर्श ही नहीं समाविष्ट हुआ है, वरन् वह मानवी-सामाजिक संबंध क्षेत्र भी अभिव्यक्त हुआ है, जिसमें रहकर कवि ने सांस ली है और अपनी वर्ग दृष्टि के अनुकूल उन मानव-संबंधों के मूल्य-मानों को संशोधित-संपातिद कर एक विश्व दृष्टि का रूप दिया है। इस ओर स्पष्ट संकेत करते हुए उन्होंने लिखा है

उपमाएँ उद्घाटित-वक्षा मृदु स्नेहमुखी
एक टक देखतीं मुझकों प्रियतर मुसकातीं।
...वे जगत-समीक्षा करते से मेरे प्रतीक-रूपक रूपने फैलाते
आगामी के
दरवाजें दुनिया के सारे खुल जाते
प्यार के किस्सों की
उदास गलियाँ
गंभीर-करुण मुसकराहट में
अपना उर का सब भेद खोलती हैं
अनजाने हाथ मित्रता के
मेरे हाथों में पहुँच ऊष्मा करते हैं
मैं अपनों से घिर उठाता हूँ
मैं विचरण करता सा हूँ एक फैंटेसी में
यह निश्चित हैं क फैंटेसी कल वास्तव होगी।"

(एक अंतर्कथा)

इस कविता में परंपरा का शोध करते हुए, उसके मूल्य को समझ लेने के बादये पंक्तियाँ आयी हैं। इनमें आए अभिव्यक्ति के विभिन्न उपकरणों के साथ मुक्तिबोध ने एक गहरी आत्मीयता प्रकट की है। इसके साथ ही उन उपकरणों का आत्मानुभूत जीवन के साथ गहरा रिश्ता भी संकेतित हुआ है। कहने का अभिप्राय यह है कि मुक्तिबोध ने जिस प्रकार फैंटेसी को जीवन मर्मों के साथ लिपटी हुई माना है, उसी प्रकार उपमा, रूपक, प्रतीक, बिंब आदि को जीवन के गहरे स्पर्श से युक्त माना है। इस संबंध में अपनी धारणा को स्पष्ट करते हुए उन्होंने लिखा है कि "ध्यान में रखने की बात है कि कोई प्रतीक तभी तक भावोत्तेजना की शक्ति रखना है, जब कि उसकी जड़ें सामाजिक-सामूहिक अनुभवों की धरती में समायी हुई हों। मात्र व्यक्तिगत धरातल पर तो हजारों प्रतीक खड़े किए जा सकते है।" (नए साहित्य का सौंदर्यशास्त्र) वस्तुतः यह बात सिर्फ प्रतीकों पर ही नहीं, उपमाओं, रूपकों, मिथकों, बिंबों आदिपर भी समान रूप से लागू होती है। इन सबको साथ लेकर ही फैंटेसी गतिशील होती है।

वस्तुतः "अंतः करण का आयतन" कविता को समग्र रूप से समझने के लिए "नयी कविता का आत्म-संघर्ष तथा अन्य निंबंध" शीर्षक ग्रंथ में दिया गया "अंतरात्मका की पक्षधरता" शीर्षक मुक्तिबोध का लेख पर्याप्त सहायक है। इसमें मुक्तिबोध ने लिखा है, "हर एक समस्या का एक समाधान हैः चाहे अधूरा की क्यों न सही। इसलिए मै। अपने आस-पास के लोगों, अपने मित्रों, आत्म संबंधियों और अपने सहयोगियों तथा परिचितों में उसे ढूंढने लगता हूँ। और, उनसे बहस छिड़ जाती है, और बहुत बार धरित्री अपने रत्न उगल देती है, और मैं अपने अभाव में भी अत्यंत सम्पन्न अनुभव करने लगता है। किंतु देश-विदेश में हो रहे प्रयत्नों की संभावना की उपेक्षा मैं नहीं कर पाता। और इस तरह मेरी छाया पृथ्वी पर भटकती रहती है। "अंतः करण का आयतन संक्षिप्त है" नामक एक मेरी कविता में मेरी इस प्रवृत्ति का चित्रण है। मेरे अपने लेखे उसमें एक लिरीसिज्म (प्रगीतात्मकता) है, एक यथार्थ प्रवण रूमानी किस्म की कल्पनाशीलता है, एक आवेश है और अंतस में आत्मालोचन। इस प्रकार मैं द्वंद्व स्थिति में पकड़कर मैत्री ही प्राप्त करता हूँ। (नयी कविता का आत्मसंघर्ष तथा अन्य निबंध, पृ. 112-13) उपर्युक्त काव्य पंक्तियों के संदर्भ में इस वक्तव्य को देखें तो यह आत्म-छाया कोई अन्य नहीं, अपनी चेतना या अन्तरात्मा ही है, जिसकी यात्रा या भ्रमण सोद्देश्य है। "स्व" से ऊपर उठकर, आत्मबद्धता की स्थिति से मुक्त होकर वह अपने जैसे अन्य लोगों के साथ एकाकार होती है, एक आत्मीय स्वजन की भांति उनके चरण का स्पर्श करती है, उन्हें सीने से लगागी है, उनके घर आंगन में घूमते हुए उन्हें ज्ञान का प्रकाश देती है और इस प्रकाश में मुग्ध भाव से उनका आलिंगन करती है, उनसे चर्चा और वाद-विवाद करते हुए उन्हें शिक्षित करती है, उनसे स्वयं शिक्षा लेती है। वस्तुतः मुक्तिबोध ने निर्वैयक्तिकता की इस दशा को आत्म-प्रसार की स्थिति के रूप में स्वीकार किया है।

भाववादी शिल्प के कारण मुक्तिबोध के मूल्यांकन के संबंध में विवाद उनकी मनोराज्योन्यमुखता (युटोपिया) को लेकर है। यह "येटोपिया" जिस प्रकार "कामायनी" में प्रसाद ने प्रस्तुत किया है, ठीक उसी प्रकार अपनी अधिकांश कविताओं में मुक्तिबोध ने भी। दोनों ने इसकी सिद्धि फैंटेसी के शिल्प के माध्यम से की है। लेकिन जहां प्रसाद का "यूटोपिया" उनके अद्वैतवादी दर्शन और उनकी भाववादी अध्यात्मवादी जीवन-दृष्टि पर आधारित है, वहाँ मुक्तिबोध के "यूटोपिया" का आधार द्वंद्वात्मक भौतिकवाद दर्शन और उनकी यथार्थवादी दृष्टि है। अतः केवल भाववादी शिल्प के आधार पर मुक्तिबोध को आध्यात्मवादी, रहस्यवादी, मनेविश्लेषणवादी, यहां तक कि अस्तित्ववादी घोषित कर देना अनुचित ही नहीं अनर्गल भ है। "अंतः करण का आयातन" कविता में मुक्तिबोध ने यथार्थपरक जीवन तथ्यों का जो अमूर्तीकरण किया है, वह यर्थार्थ को और अधिक मानवीय और ठोस बनाने के लिए ही किया है। अतः भाववादी शिल्प को ग्रहण करते हुए भी मुक्तिबोध एक यथार्थवादी समाजवादी कलाकार के ही रूप में

हमारे सामने आते हैं।

यथार्थवादी कला के लिए भाववादी शिल्प वर्जित नहीं है। दुनिया के बडे-बड़े समाजवादी यथार्थवादी कलाकारों ने भाववादी शिल्प का सार्थक उपयोग करके अपने कद को ऊंचा किया है। इस स्थिति को स्पष्ट करते हुए ए.एस.वास्केत्स ने लिखा है, "इट इज नेस्सेसरी टु डिस्कवर न्यू मेथडस, एण्ड आई बिलीव दैट दिस इन नथिंग बट ए नेचुरल प्रॉसेस। विदाउट दिस फ्रूटफुल एसिमिलेशन ऑव न्यू मेथड्स आव एक्सप्रेशन, द आर्टिस्टिक पर्सनैलटीज ऑव सोशलिस्ट आर्ट वुड हैव बीन स्टैण्टेड इन देअर डेवलपमेंट। मायकोवस्की वुड नाट हैव एग्जिस्टेड विदाउट फ्यूचरिज्म नॉर सिकारो (siqueiros) विदाउट मार्डन पेंटिंग ब्रेख्त विदाउट एक्सप्रेशनिज्म, नरुदा, अरागाँ ऑर एलुआर्ड विदाउट सुर्रियलिज्म इटीसी।" (आर्ट एंड सोसायटी पृ. 37)। वस्तुतः साहित्यान्दोलन के रूप में (फ्यूचरिज्म) अभिव्यंजनावाद (एक्सप्रेशनिज्म), आधुनिक चित्रकला का प्रभाववाद (इम्प्रेसनिज्म), अति यथार्थवाद (सुर्रियलिज्म) आदि शिल्प संबंधी साहित्यान्दोलन एक भाववादी बुर्जुआ मनोवृत्ति से प्रेरित होकर अस्तित्व में आए थे। लेकिन बदलती हुई परिस्थितों में मानवी यथार्थ की जटिलता की अभिव्यक्ति के लिए समाजवादी विचारधारा के कलाकारों ने भी इन शिल्प-विधियों को मौलिक ढंग से स्वीकार कर अपने अपेक्षित लक्ष्यों की अभिव्यक्ति के लिए इनका सार्थक उपयोग किया है। अपने फैंटेसी के शिल्प में मुक्तिबोध ने एक "यूटोपिया" प्रस्तुत करने के लिए भविष्यवाद अपने अंतर्लोक का विश्लेषण करने के लिए अतियथार्थवाद यहां तक कि अभिव्यजंनावाद, प्रभाववाद आदि के शिल्प का भी यत्र-तत्र सहारा लिया है। लेकिन इस प्रक्रिया में उनकी जीवन-दृष्टि जनोन्मुखी से विवचेतस् बनते हुए कलाकार की विकास प्रक्रिया का एक यथार्थ चित्र प्रस्तुत हुआ है, जो उन्हें यथार्थवादी कलाकार सिद्ध करता है।

वस्तुतः एक विशेष प्रकार के शिल्प का चयन करने के पीछे मुक्तिबोध के सम्मुख एक गंभीर चुनौती रही है। जिस प्रकार अकलात्मकता के गलत आक्षेप द्वारा प्रगतिशील काव्य धारा को नयी कविता के मंच से साहित्य-क्षेत्र से निष्काषित करने का प्रयास किया गा, उसे लेकर वे काफी चिंतित थे। मुक्तिबोध ने कई स्थानों पर इस तथ्य की घोषणा की है कि "कलात्मकता केवल नयी कविता की बपौती नहीं है। उसे हम प्रगतिशील कवि भी साथ कह सकते हैं। इस भावना से प्रेरित होकर उन्होंने नयी कविता की शिल्पगत उपलब्धियों को स्वीकार किया तथा उसे भाववादी बुर्जुआ शिल्प मानते हुए भी, उसका अपनी प्रगतिशील जनवादी चेतना की अभिव्यक्ति के लिए अत्यंत सार्थक ढंग से उपयोग किया है। इस प्रक्रिया में उन्होंने नयी कविता के समूचे तंत्र को, एक विशेष भावधारा की अभिव्यक्ति के अभेद्य दुर्ग को भीतर से तोड़ा है: उसकी प्रतीक योजना, मिथक रचना, उपमा और रूपक-व्यवस्था बिंब-विधान द्वारा निर्मित उसके दृढ़ प्राचीर को तोड़ते हुए, जनवादी चेतना के लिए उसका द्वार खोल दिया हैं पाठ्यक्रम में निर्धारित नयी कविता के प्रतिनिधि कवि अज्ञेय द्वारा प्रस्तुत शिल्पगत उपकरणों को मुक्तिबोध द्वारा प्रयुक्त उपकरणों : मिथकों, प्रतीकों, रूपकों, बिंबों आदि से मिलकर देखें तो यह बात स्पष्ट हो जाएगी। (आगे इस दृष्टि से मुक्तिबोध और अज्ञेय की यथास्थान संक्षिप्त तुलना भी की जाएगी)।

संदर्भ ग्रंथ

1. चकमक की चिनगारियां पहला बंद
2. नये साहित्य का सौंदर्य शास्त्र (पृ. 156)
3. इल्यूज़न एंड रिएलिटी (पृ. 160-61)
4. मुक्तिबोध की काव्य प्रक्रिया (पृ. 72-84) अशोक चकधर
5. एक साहित्य की डायरी (पृ. 18, 20)
6. कामायनी : एक पुनर्विचार (पृ. 6, 8)
7. आर्ट एंड सोसायटी (पृ. 37)
8. नये साहित्य का सौंदर्य शास्त्र (पृ. 129)
9. एक अंतर्कथा